Chap-3

तृतीय अध्याय

काव्य और संगीत का सम्बन्ध

परिभाषा :- ललित कलाएँ, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्र कला, संगीत कला, काव्य कला, काव्य कला तथा अन्य कलाओं की तुलना, काव्य और संगीत के समान तत्व, कल्पना भावाभिव्यक्ति, संस्कृति और समाज का प्रतिबिम्ब, धर्म और भक्ति, आनंद प्राप्ति, सहृदयता, नाद, रसोत्पत्ति, छन्द, अलंकार, लय, भाषा, निष्कर्ष ।

-:: काव्य और संगीत का सम्बन्ध :: -

काव्य और संगीतका घनिष्ठ सम्बन्ध है और इनका पारस्परिक सम्बन्ध प्राचीनकाल से चला आ रहा है। काव्य और संगीत की आराध्य देवी सरस्वती को एक साथ ही वीणाधारिणी व पुस्तकधारिणी के रूप में माना जाता है। भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कवि, संगीत के प्रकाण्ड पण्डित भी रहे हैं और उनकी यह मान्यता है कि आदिम संगीतज्ञ नटराज के ताल-लय समन्वित ताण्डव से काव्य व संगीत के तत्वों का एक साथ ही सूत्रपात हुआ था। प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा कहा गया है कि संगीत का उद्गम " राग भैरव " से हुआ तथा राग भैरव ईश्वर के अघोर मुख से उत्पन्न हुआ और काव्य की आदिम वर्णमाला महादेव के पदचाप से उद्भूत हुई। यही कारण है कि प्राचीन काल में कवि स्वयं गायक भी होते थे। मध्यकाल के सन्त कवियों में भी संगीतात्मकता पूर्ण रूप से परिलक्षित होती है क्योंकि इन सन्त कवियों ने गायन को दृष्टि में रखकर ही भजन एवं पदों की रचना की है।

इसी प्रकार प्राचीन ग्रीक काव्य में भी, " काव्य में संगीत तत्व की महत्ता " को स्वीकारा गया है। होमर आदि प्राचीन कवियों ने गा-गाकर ही अपने महाकाव्य को प्रस्तुत किया। आयरलैण्ड के प्राचीन काव्य में भी यही स्वरूप दिखाई देता है।

परिभाषा :- काव्य और संगीत में इतना अधिक सामंजस्य है कि अनेक पश्चिमी विद्वान काव्य की परिभाषा प्रस्तुत करते समय उसकी संगीतात्मकता का उल्लेख करना अति आवश्यक समझते हैं पाश्चात्य विद्वान एडगर एलेन पो के मतानुसार, "संगीत का जब किसी आनन्ददायक कल्पना से मिलाप होता है तो वह कविता बन जाती है और बिना कल्पना के संगीत रहित कल्पना अपनी स्पष्टता अथवा निश्चितता के कारण गद्य का रूप धारण कर लेती है।"[1] कारलायल ने संगीतमय विचारों को ही कविता कहा है। "जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मुझे कविता की इस प्राचीन तथा परिमार्जित परिभाषा में विशेष अर्थ दिखाई देता है कि वह छन्दोबद्ध होती है - - --- उसमें संगीत का पुट होता है और वह एक गीत होती है - - - संगीतात्मक विचार अथवा भावना, ऐसे मस्तिष्क से नि:सृत होती है जिसने वस्तु के अन्तरतम में प्रविष्ट होकर उसके गूढ़ रहस्य का पता लगा लिया है।"[2]

आलफ्रेड का कहना है कि कविता में और कितने भी गुण क्यों न हों पर यदि वह संगीतविहीन और अर्थ की रमणीयता से हीन है तो फिर वह कविता नहीं हो सकती।"[3] लार्ड बायरन का कथन है कि जब मनुष्य के भाव और इच्छाएं अन्तिम सीमा पर पहुंच जाती हैं तब वे कविता का रूप धारण कर लेती हैं। वास्तव में कविता राग के सिवा कुछ नहीं है।"[4] फूलर के अनुसार - "कविता शब्दों के रूप में संगीत और संगीत, ध्वनि के रूप में कविता है।"[5]

ई० पो० नामक अमरीकन साहित्यकार ने संगीतमय शब्दावली को ही कविता कहा है।"[6] अत: यह स्पष्ट है कि कविता को सुन्दर, मधुर तथा रसास्वादन के लिए संगीत आवश्यक है। सैन्सटान ने भी कहा है कि "कविता तथा गद्य की वे ही पंक्तियाँ सबसे अधिक स्मरण तथा रसास्वादन

के हेतु उद्धृत की जाती है जो संगीतमय होती है।"[७] अत: यह कहा जा सकता है कि पश्चिमी विद्वानों ने भाषा, छन्द, कल्पना तथा सौन्दर्य इत्यादि के साथ संगीत को भी काव्य में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

पाश्चात्य विद्वान ही नहीं भारतीय विद्वान भी संगीत के महत्व को स्वीकार करते हैं। भरत ने अपने "नाट्यशास्त्र" में दृश्य काव्य के सम्बन्ध में कहा है –

"मृदुललित पदार्थं गूढ़ शब्दार्थ हीनं
  बुधजन सुख योग्यं बुद्धिमन्नृत्ययोग्यम्
बहुर सकृत मार्गं सन्धि सन्धानयुक्तं
  भवति जगति योग्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम् ।

इसी प्रकार बाबू गुलाबराय जी भी संगीत और काव्य को अभिन्न मानते हैं। उनके अनुसार "संगीत आकार प्रधान काव्य है, काव्य सार्थक संगीत है।"[८] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान दर्शाया है और वह कहते हैं कि "काव्य एक बहुत ही व्यापक कला है। जिस प्रकार मूर्त विधान के लिए कविता चित्र-विधा की प्रणाली का अनुसरण करती है। उसी प्रकार नाद सौष्ठव के लिए वह कुछ संगीत का सहारा लेती है। नाद-सौन्दर्य कविता की आयु बढ़ाता है। अत: नाद सौन्दर्य का योग भी कविता का पूर्णस्वरूप खड़ा करने के लिये कुछ न कुछ आवश्यक होता है।"[९] आचार्य ललिता प्रसाद जी सुकुल ने तो काव्य और संगीत को पर्यायवाची माना है ~~--~~ "सरस शब्दावली और भावनाओं के सजीव चित्रण जब ताल और स्वर में बंधकर या अन्य किसी ऐसे ही विधान में सजकर व्यक्त होते हैं जिनके द्वारा आन्तरिक समन्वय की प्रतिस्थापना हो जाती है और रस का प्रवाह उमड़ने लगता है तो उसे ही काव्य या संगीत कहते हैं।"[१०] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी भी संगीत और काव्य के पारस्परिक सम्बन्ध और महत्व को स्वीकार करते हैं – "संगीत कला संवाहन नाद है। काव्य शब्दों का एक

विशेष आरोह-अवरोह, संगीत या तारतम्य है। शब्द एक ओर जहाँ अर्थ की भाव भूमि पर पाठक को ले जाते हैं, वहीं नाद के द्वारा आश्रय विधान भी करते हैं। काव्य कला का आधार भाषा है जो नाद का भी विकसित रूप है। अस्तु काव्य और संगीत दोनों के आस्वादन का माध्यम एक ही है केवल अन्तर इतना है कि एक का आधार नाद का स्वर व्यंजनात्मक स्वरूप है, दूसरी का आधार नाद का स्वरात्मक आरोह और अवरोह है।"[11]

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि काव्य को रुचिर, रोचक एवं मधुर बनाने के लिये संगीत का होना अति आवश्यक है।

जिस तरह काव्य में संगीत तत्व आवश्यक हैं उसी तरह कण्ठ संगीत में काव्य तत्व भी सहायक है। प्राचीन काल से ही संगीत में काव्य तत्व का होना आवश्यक माना जाता है। काव्य तत्वों का प्रयोग करने से संगीत का अर्थ स्वयं विश्लेषित हो उठता है। संगीत का मूल आधार नाद है उसकी रमणीयता के साथ ही संगीत की उत्कृष्टता प्रतिपादित होती है और यह शब्दों के प्रयोग से ही सम्भव हो सकता है इसलिये यदि संगीत में से काव्य तत्व को निकाल दिया जाये तो संगीत मात्र आलाप प्रलाप के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहेगा। यही कारण है कि संगीतज्ञ भी संगीत में काव्य के महत्व को स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि संगीत को कविता से अलग कर देने से उसका महत्व व प्रभाव एकदम समाप्त सा हो जाता है। काव्य में उपस्थित संगीत तत्व उसके प्रभाव व महत्व को दुगना कर देते हैं। गायनाचार्य पं० विष्णु दिगम्बर जी का कहना है कि -" संगीत और काव्य का जब मेल होता है तो सोने में सुगन्ध आ जाती है। सरस्वती की वीणा - पुस्तक इसी का निदर्शन है।"[12] काव्य और संगीत दोनों एक दूसरे से मिले हुए हैं। " माता सरस्वती के ये दो स्तन काव्य और संगीत हैं उन्हीं का दूध पीकर कवि, कवि बना है और संगीतकार, संगीतकार।"[13]

इस प्रकार काव्य और संगीत दोनों में अनेक समान तत्व विद्यमान हैं, जिनके कारण काव्य और संगीत दोनों में पारस्परिक सम्बन्ध बना हुआ है।

ललित-कला :- ललित कलाओं में काव्य एवं संगीत दोनों का गहन सम्बन्ध माना गया है, जिनमें मधुरता, सुन्दरता एवं आकर्षण है। विभिन्न ललित कलाओं में मूर्ति, स्थापत्य तथा चित्रकला स्थिर कलाएँ हैं किन्तु काव्य एवं संगीत दोनों ही गतिशील कलाएँ हैं और दोनों ही कर्णेन्द्रियों के माध्यम से आनन्दानुभूति उत्पन्न करती हैं। ललित कलाओं में काव्य और संगीत दोनों ही सूक्ष्म कलाएँ मानी गई हैं और इसी सूक्ष्मता के कारण ही इन्हें उत्तम श्रेणी में गिना जाता है। वास्तुकला की अपेक्षा मूर्तिकला अधिक सूक्ष्म होती है जिससे यह वास्तुकला की अपेक्षा श्रेष्ठ मानी जाती है। चित्रकला इन दोनों कलाओं से उच्च कला है परन्तु सूक्ष्मता के आधार पर यह काव्य और संगीत की अपेक्षा कम ही है। "काव्य और संगीत के लिए न तो ईंट, पत्थर की आवश्यकता है, न छैनी, हथौड़ी की और न रंग तूलिका आदि की। वास्तुकार जीवन की मादकता और मुस्कान को ईंट, पत्थर से जड़कर प्रकट करता है। मूर्तिकार कठोर पत्थर को तराश कर रूप प्रदान करता है तथा चित्रकार उसे रंग तथा तूलिका के माध्यम से चित्रित करता है परन्तु कवि, संगीतकार शब्दों के ताने बाने से और स्वरों के उतार-चढ़ाव से ही उसे मूर्तिमान कर सजीव बना देते हैं।"[१४]

विद्वानों ने ललित कलाओं की संख्या पाँच मानी है :-

(१) वास्तु कला।
(२) मूर्ति कला।
(३) चित्रकला।
(४) संगीत - नृत्य कला।
(५) काव्य कला।

१- वास्तु-कला :- वास्तु कला का मुख्य उद्देश्य यह है कि पदार्थों द्वारा सुन्दर एवं अलंकृत भवनों का निर्माण करना। भारतीयों के वास्तु कला के अध्ययन के दो मुख्य आधार हैं। प्रथम वैदिक

साहित्य के निर्देश और दूसरे हड़प्पा और मोहन जोदड़ों के प्राचीन अवशेष । उत्कृष्ट वास्तु कला के अत्यन्त प्राचीन उदाहरण हमें प्राचीन नगर राजगृह के किले तथा अनेक भवनों में मिलता है । मुगल वास्तु निर्माण का प्रारंभ वस्तुत: अकबर के शासन काल से ही माना जाता है । अकबर ने फतेहपुर सीकरी को सर्वाधिक गौरवान्वित किया । हूँमायू का मकबरा जो उसने दिल्ली में बनवाया, वह वास्तु शिल्प का सुकुमार नमूना है । इसके पश्चात शाहजहाँ का काल आया, जिसने थोड़े ही वर्षों में सैकड़ों इमारतें बनवायीं, जिसमें उच्च कोटि का वास्तु शिल्प मिलता है ।

शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया ताजमहल आज भी संसार के नौ आश्चर्यों में से एक है । इसके पश्चात औरंगजेब को कला में रुचि न होने के कारण वास्तु कला का निर्माण बन्द सा हो गया । अवध के नवाबों ने अपनी राजस्थानी लखनऊ को इस कला द्वारा अलंकृत किया । अत: यह कहा जा सकता है कि इस देश में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना होने तक वास्तुकला का निर्माण होता रहा ।

२- <u>मूर्ति-कला</u> :- जब मोहन जोदड़ों और हड़प्पा के अवशेषों की खुदाई हुई, तब उसमें वास्तु कला की अपेक्षा मूर्ति कला के अधिक उत्कृष्ट उदाहरण मिले । मौर्य वंश में सम्राट अशोक ने चौरासी हजार विशाल बौद्ध धर्म के स्तूपों का निर्माण करवाया था इन स्तूपों का वास्तु निर्माण की दृष्टि से जितना महत्व है उतना ही मूर्ति कला की दृष्टि से भी है । दो - भारहुत तथा सांची के स्तूपों की मूर्ति कला उल्लेखनीय है । इसी प्रकार लुम्बिनी तथा कुशी नगर में स्तूप स्तंभों पर स्थित मूर्तियों में भी मौर्यकला के दर्शन होते हैं । मौर्यकाल के पश्चात् खंडगिरी, उदयगिरि तथा नीलगिरि की पहाड़ियों में खोदी गई जैन गुफायें आती हैं । जैन मंदिरों के पश्चात, शुंग कालीन कला का विकास हुआ । इस कला में पत्थरों की अपेक्षा मिट्टी में कला का अंकन किया जाता है । शुंग काल की मूर्तियां दो - भरहुत

तथा सांची के स्तूपों के तोरणों तथा द्वार स्तम्भों पर अंकित है। इसके पश्चात् ग्रीक, शकों तथा कुषाणों की शक्ति की प्रतिष्ठा से गांधार, शैली का उद्भव हुआ। गांधार मूर्तिकला की मूर्तियाँ काबुल तथा खुतन तक मिलती हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत में त्रिचनापल्ली का मंदिर, तंजौर का भीमकाय कृष्णम मूर्ति का मंदिर बहुत प्रख्यात है। " इसी प्रकार द्रविड़ परंपरा में रामेश्वरम् तथा अन्य मंदिरों की दीवारें मूर्तियों से आच्छादित हैं जिनमें मूर्ति कला की सभी विशेषतायें पायी जाती हैं।"[15] इसी प्रकार आजकल जयपुर तथा नाथ द्वारा में भी यह कला देखने को मिलती है। इस कला का मूर्त आधार पत्थर, धातु या मिट्टी आदि होता है जिसे मूर्तिकार काट-छाँटकर सजीव या निर्जीव पदार्थों के रूप में ढालता है।

३- चित्रकला :- यह कला मूर्तिकला की अपेक्षा बहुत सूक्ष्म एवं कोमल कला है। यह कला भी काफी विस्तृत रूप में फैली हुई है। चित्रकला का संपूर्ण विकास अजंता की गुफाओं के भित्ति चित्रों में दिखाई देता है। ये चित्र भिन्न-भिन्न कालों में बनाए गए हैं। अजंता के चित्र भारतीय चित्रों में सर्वोत्तम माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त गुप्तकालीन गुफाओं में चित्र अधिक एवं सुन्दर हैं इसके सुन्दर उदाहरण " गया " में बनवाये गये बौद्ध मठ के चित्रों में मिलता है।

मुगल काल में चित्रकला का बहुत विकास हुआ क्योंकि अकबर तथा जहांगीर कलाप्रेमी थे। " अकबर नामा " का निर्माण अमीर दानिश तथा अन्य असंख्य कलाकारों द्वारा सम्पन्न हुआ और प्राय: इसका प्रत्येक चित्र एक से अधिक कलाकारों के सहयोग से बना है। जहांगीर तथा शाहजहां के काल में भी इस कला की काफी उन्नति हुई।

चित्रकला का मूर्त आधार कपड़ा, लकड़ी अथवा कागज का ऊपरी धरातल है जिस पर कलाकार आड़ी-तिरछी रेखाओं एवं रंगों द्वारा अपने मानसिक भावों के अनुरूप ही किसी घटना या दृश्य को चित्रित करता है। अत: यह कहा जा सकता है कि चित्रकला में संवेदनात्मक तथा भावात्मक अनुभूतियों का समावेश होता है। इसी कारण यह अत्यन्त महत्वपूर्ण

कला मानी जाती है ।

४- संगीत-कला :- संगीत कला भी एक ललित कला है । भातखण्डे जी ने कहा है -"गीत, वाद्य और नृत्य, इन तीनों कलाओं का जिसमें समावेश होता है वह संगीत कहलाता है ।"[१६] भारतवर्ष में इस कला का प्रारंभिक प्रमाण, ऋग्वेद से ही मिलता है । ऋग्वेद में यह उल्लेख मिलता है कि गंधर्वों ने संगीत को आराध्य माना था । इसके पश्चात वाल्मिकी रामायण तथा महाभारत में भी संगीत कला का सुन्दर विकास हुआ । इस प्रकार प्राचीन साहित्यों में संगीत का उल्लेख मिलता है परन्तु शास्त्रीय - संगीत का विकास तो मध्य काल में ही हुआ है । इस युग में कई संगीत ग्रन्थ लिखे गये ।

मुगल काल में संगीत कला का सर्वाधिक उत्कर्ष हुआ । अकबर के काल में संगीत सम्राट तानसेन, बैजु बावरा, स्वामी हरिदास जैसे महान संगीतज्ञ हुए । इनके पश्चात बीसवीं शताब्दी में श्री भातखण्डे तथा विष्णु दिगंबर-पलुस्कर के सतत प्रयत्नों के पश्चात संगीत कला पुन: समाज में प्रतिष्ठित हुई । इन दोनों ने मिलकर अनेक स्वर-लिपियां तैयार कीं तथा अनेक पुस्तकें लिखीं । दूसरी ओर बंगाल में रवीन्द्र नाथ टैगोर ने रवीन्द्र-संगीत स्थापित किया । इसके अतिरिक्त आज के युग में फिल्मी संगीत तथा लोक संगीत भी अत्याधिक प्रचलित होता जा रहा है ।

"संगीत का आधार नाद है । जो या तो मानव कण्ठ से प्रसूत होता है या यन्त्रों से उत्पन्न ।"[१७] इस कला में भावों को अभिव्यक्त करने की कुशलता एवं क्षमता सभी कलाओं से अधिक है, यही इस कला की विशेषता है ।

संगीत कला के अन्तर्गत ही नृत्य कला भी आती है । भावों के अनुसार शरीर के अंगों का ताल बद्ध संचालन करना ही नृत्य कहलाता है ।

भारत में शास्त्रीयता को आधार मानकर नृत्य की चार प्रधान शैलियाँ मानी गईं हैं जैसे - भरत नाट्यम, कथकली, कत्थक, मणिपुरी तथा इसके अतिरिक्त लोक नृत्य भी है।

१- भरत नाट्यम :- भारतीय नृत्य शैलियों में यह शैली सबसे प्राचीन है। यह एक धार्मिक नृत्य है क्योंकि इसका सर्वप्रथम उद्गम मंदिरों में हुआ था। इस शैली का विकास भरतमुनि के नाट्य शास्त्रों के नियमों के आधार पर हुआ है इसलिये ही इसका नाम भरत नाट्यम पड़ा।

२- कथकली :- यह परंपरा भी अत्यन्त प्राचीन है। केरल और मालाबार के प्रदेशों में यह अधिक प्रचलित है। इस नृत्य की यह विशेषता है कि इसे केवल पुरुष ही करते हैं इसे मंच की आवश्यकता नहीं होती। इसमें रामायण तथा महाभारत की कथा व्यक्त की जाती है। मालाबार गाँव के चौराहों पर यह नृत्य रात भर चलता रहता है।

३- कत्थक :- भारतीय और मुगल संस्कृति के समन्वय से जिस शैली का विकास हुआ, वह कत्थक कहलाता है। वास्तव में यह नृत्य भूमि पर पैर में बंधे हुए घुंघरुओं के द्वारा तबला बजवाता है। इसमें संपूर्ण शरीर को स्थिर रखना पड़ता है, गति केवल पैरों में होती है। इस शैली के मुख्य कलाकार श्री शंभु महाराज माने जाते हैं।

४- मणिपुरी :- इस नृत्य का उद्भव आसाम की पहाड़ियों के बीच स्थित " मणिपुर " नामक स्थान पर हुआ। धार्मिक उत्सवों तथा आयोजनों पर यह नृत्य किया जाता है। यह अधिकतर मंदिरों तथा गांवों के चौराहों पर पूर्णिमा की रात्रि को होता है। इसमें नृत्यकार के शरीर के घुमाव-फिराव में अत्याधिक लोच और कोमलता होती है जिससे यह नृत्य अन्य नृत्यों से बिल्कुल ही भिन्न है।

५- <u>लोक-नृत्य</u> :- यह परंपरा भी अत्यन्त प्राचीन है। विवाह, मांगलिक शुभअवसरों, दुर्गापूजा आदि के उत्सवों पर निम्न तथा उच्च वर्गों के द्वारा जो नृत्य किये जाते हैं, लोक नृत्य कहलाते हैं जिनके साथ ढोल, मृदंग तथा करताल आदि वाद्य बजाये जाते हैं। समस्त भारत के लोक नृत्य पृथक पृथक प्रदेशों की विशेषताओं को लेकर विकसित हुए हैं जैसे - गुजरात का "गरबा" राजस्थान का "गौरि नृत्य", मिरजापुर की "कजरिया" इत्यादि। यह शैली सादगी तथा रोचकता के कारण अधिक लोकप्रिय हुई।

५- <u>काव्य-कला</u> :- काव्य कला को सर्वोत्कृष्ट कला माना जाता है क्योंकि यह कला अपने आप में पूर्ण है।

काव्य-कला की मुख्य विशेषता यह है कि इसे लिखित रुप में सुरक्षित रखा जा सकता है। यह पुस्तकीय रुप में रखी जा सकती है। अन्य कलाओं को यह सुविधा प्राप्त नहीं है। काव्य के द्वारा अतीत काल के मनीषियों के अनुभव भी मानव जाति को सहज रुप से प्राप्त हुए।

अन्य ललित कलाओं द्वारा सौंदर्य की अनुभूति होती है किन्तु व्यावहारिक जीवन में उससे प्रेरणाएं नगण्य मात्रा में ही मिलती हैं। उनसे हमें आनन्द मिलता है परन्तु उनका प्रभाव हमारे ऊपर क्षणिक ही पड़ता है, स्थायी नहीं होता क्योंकि वे हमारे आचरण को दूर तक प्रभावित नहीं कर सकती। काव्य कला के द्वारा हमारा मन भी प्रसन्न होता है और वह हमारे [illegible] आचरण को विकसित एवं नियंत्रित भी करती है और उपयोगी जीवन व्यतीत करने में सहायता देती है। अत: काव्य में ललित और उपयोगी दोनों ही कलाओं के गुण सम्मिलित रहते हैं।

"इसमें संगीत की भांति भावोन्मेष की शक्ति और तन्मय एवं

तत्पर करने का गुण है, स्वरों का आरोह अवरोह भी । चित्रकला की भाँति इसमें वस्तुओं के रूप अंकित करने की क्षमता है । मूर्तिकला तथा वास्तु कला की भाँति इसमें बाह्य सौष्ठव रहता है अन्य कलाओं में किसी न किसी गुण या अवयव की कमी पाई जाती है किन्तु काव्य कला एक पूर्ण कला है ।"[१८]

काव्य और अन्य कलाओं की तुलना :-

काव्य कला, मूर्ति कला एवं वस्तु कला :-

मूर्ति-कला एवं वास्तु-कला में विशेषत: रूप संगठन और सुडौलता में सामंजस्य पाया जाता है । काव्य कला में भी सुडौलता एवं रूप संगठन पर ध्यान दिया जाता है । काव्य की बाह्य रचना में मूलत: उन्हीं सिद्धान्तों का पालन होता है, जिनका वास्तु-कला और मूर्ति कला में किया जाता है ।

वास्तु कला और मूर्ति-कला का उद्देश्य केवल बाह्य सौन्दर्य या सौष्ठव की अभिव्यक्ति है, इसमें भाव की व्यंजना स्वल्प होती है । काव्य-कला मूलत: अनुभूति सापेक्ष्य है । अत: काव्य कला में मूर्ति कला और वास्तु-कला की विशेषतायें भी रहती हैं इसके साथ ही भाव व्यंजना और अर्थ प्रसार की क्षमता भी रहती है ।

काव्य कला और चित्र कला :-

चित्र कला गति-शिथिल कला है वह परिवर्तनशील घटनाओं या भाव-मुद्राओं का चित्रण नहीं कर सकती । यह एक स्थिर कला होने के कारण एक ही क्षण तथा कुछ ही पदार्थों का दिग्दर्शन करा सकती है किन्तु

काव्य भिन्न भिन्न स्थानों में होने वाली और परिवर्तनशील घटनाओं तथा उनकी परिस्थितियों का चित्रण कर सकता है, किन्तु चित्रकला की भी अपनी कुछ विशेषतायें हैं ।

" चित्रकला एक ही पल का रूप अंकित करती है किन्तु उसका प्रभाव जितना संश्लिष्ट और सुसंबद्ध होता है, उतना काव्य में नहीं । काव्य गतिशील कला है अत: एक स्थान यत काल विशेष की घटना का प्रभाव चित्रकला की तरह इसमें घनीभूत नहीं हो सकता । चित्रकला में वातावरण पदार्थों के संबंध और आकार वर्ण का जितना समन्वित प्रभाव एक साथ आ सकता है, उतना काव्य में नहीं ।"[१६] किन्तु अन्य बातों को लेकर काव्य कला, चित्रकला से उत्कृष्ट सिद्ध हो जाती है । काव्य में वस्तु चित्रण के साथ भाव-व्यंजना जितनी तीव्रता से होती है उतनी चित्र कला में संभव ही नहीं । चित्रकला, गतिशील न होने के कारण जगत की परिवर्तनशील स्थितियों का चित्रण नहीं कर सकती, इसलिये इसमें असफल रह जाती है जबकि काव्य कला इसमें पूर्णत: सफल उतरती है ।

काव्य कला तथा संगीत एवं नृत्य कला :-

काव्य, संगीत एवं नृत्य तीनों ही गतिशील कलाएं हैं । काव्य तथा संगीत का अविच्छिन्न सम्बन्ध है और संगीत से नृत्य कला जुड़ी हुई है । काव्य और संगीत का आधार नाद है तथा संगीत से नृत्य कला का सम्बन्ध होने से यह भी नाद - नाद पर ही आधारित है । लय और भाव दोनों ही नृत्य-कला की विशेषताएं हैं और काव्य में भी इन सबका महत्व है काव्य के लिये शब्द अनिवार्य है परन्तु नृत्य के लिये स्वर एवं ताल आवश्यक है ।

संगीत में केवल स्वरों का ही प्रयोग होता है और काव्य में व्यंजनों का भी । अत: संगीत का माध्यम काव्य के माध्यम से अधिक नाजुक है इसलिये

भावों के तीव्र उन्मेष में काव्य, संगीत की समता नहीं कर सकता । दूसरी ओर काव्य में यह विशेषता है कि शब्दों के सहारे वह भावों को स्पष्टतया व्यक्त कर सकता है । काव्य वस्तुओं का मानस चित्र खड़ा कर सकता है । संगीत केवल उनका अस्पष्ट आभास मात्र दे सकता है । संगीत केवल मानसिक स्थितियों को ही प्रकट कर सकता है । काव्य बाह्य जगत और मानसिक मन की आंतरिक स्थितियां दोनों को सफलतापूर्वक व्यक्त करता है । काव्य घटनाओं और पदार्थों का चित्रण कर सकता है, संगीत इसमें असफल रह जाता है ।

यही कारण है कि अपने को पूर्ण बनाने के लिये काव्य और संगीत दोनों ही एक दूसरे की सहायता लेते हैं । "संगीत अर्थ बोध के लिये काव्य का सहारा लेता है और काव्य भी प्रभाव वृद्धि के लिये संगीत का । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं ।"[20]

यदि सभी दृष्टि से विचार किया जाये तो काव्य का क्षेत्र संगीत से काफी विस्तृत है । इसकी संवेदना अधिक व्यापक है परन्तु प्रभाव दीर्घ होते हैं परन्तु संगीत में ठीक इसके विपरीत प्रभाव बहुत तीव्र होते हैं । काव्य का आधार शब्द है अत: संगीत के गुण भी इसमें दिखाई देते हैं । इसमें वस्तुचित्र खड़ा करने की क्षमता है । वस्तु और भाव के एकत्र संयोग से इसका महत्व और अधिक बढ़ जाता है । वैसे ऐसा कहा जाता है कि काव्य, संगीत और चित्र का समन्वित रुप है ।

काव्य और संगीत के समान तत्व :-

कल्पना :- संगीत एवं काव्य दोनों में ही कल्पना का महत्वपूर्ण स्थान है । कवि के लिये तो कहा गया है कि 'जहां न पहुंचे रवि, वहां पहुंचे कवि' । रवि की किरणें तो सूक्ष्म वस्तुओं को भी आलोकित करती हैं, किन्तु कवि की दृष्टि उससे भी अधिक तीव्र होती है ।

काव्य में जो कार्य कविता का है, संगीत में वही कार्य राग का है। ध्वनि के पक्ष में राग मनुष्य की अन्तर्मन की भावनाओं को अभिव्यक्त करने का माध्यम है। संगीतकार, राग के द्वारा अपनी कल्पना के आधार पर नये नये प्रकारों से मनुष्य के मन को आनन्दानुभूत करता है। राग तथा उसकी कल्पना दोनों का मुख्य उद्देश्य सौन्दर्य की सृष्टि करना है और रस का प्रादुर्भाव कर आनन्द प्रदान करना है। गायक संगीत में कल्पना की अवतारणा तो कर सकता है किन्तु राग की निश्चित सीमा के भीतर रहकर। गायक का क्षेत्र केवल राग विस्तार तक ही सीमित होता है। इस क्षेत्र के अन्दर ही उसे संपूर्ण कला का प्रदर्शन करना होता है। गायक भावों को किसी प्रकार भी व्यक्त कर सकता है किन्तु कल्पना को व्यक्त सिर्फ कवि ही कर सकता है। संगीत में कल्पना के महत्व को स्वीकार करते हुए एडगर एलन पो ने कहा है कि "संगीत का जब किसी आनन्ददायक कल्पना से मिलाप होता है तो वह कविता बन जाती है और बिना कल्पना के संगीत मात्र संगीत बनकर रह जाता है। संगीत रहित कल्पना अपनी स्पष्टता अथवा निश्चितता के कारण गद्य का रूप धारण कर लेती है।"[२१]

वास्तविक रूप में संगीत, संगीतज्ञ की कल्पना ही है। संगीतज्ञ अपनी कल्पना के द्वारा ही किसी गीत को किसी भी राग में निबद्ध कर सकता है।

<u>भावाभिव्यक्ति</u> :- संगीत और काव्य दोनों ही मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने के साधन हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः अपनी भावनाओं को दूसरों को अभिव्यक्त करता है तथा उनकी भावनाओं को जानने की जिज्ञासा भी उसमें रहती है। "सीमित और स्थूल बाह्य रूप एवं असीम भावनाओं और कल्पनाओं के सूक्ष्म अन्तर्जीवन में समन्वय स्थापित करने का और इस प्रकार सत्य की

प्रतिष्ठा करने का कृत्य काव्य और संगीत द्वारा ही सम्पादित होता है ।..[22]

काव्य और संगीत दोनों का सम्बन्ध अन्तर्मन से होता है । जो भावनायें अन्तर्मन से उठती हैं उसे कवि काव्य के रूप में प्रदर्शित करता है यही बात संगीत पर भी लागू होती है । गायक भी अपनी भावनाओं को भावानुसार रागों के द्वारा अभिव्यक्त करता है । भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिये कवि शब्दों का आश्रय लेता है जबकि संगीतज्ञ सधे हुए सप्त स्वरों का । कवि सार्थक शब्दों द्वारा तथा अनुकूल वातावरण की सहायता लेकर रस की सृष्टि करता है जिसे काव्य शास्त्र में आलम्बन, उद्दीपन इत्यादि के नाम से जाना जाता है किन्तु संगीतज्ञ को स्वरों की ध्वनि से ही वातावरण रस और अर्थ को प्रस्तुत करना होता है । स्वरों तथा ध्वनि की उच्चारण प्रक्रिया तथा स्वरों के कंपन से ही वह कोमल भावनाओं को प्रदर्शित कर सकता है ।

<u>संस्कृति और समाज का प्रतिबिम्ब</u> :- काव्य और संगीत संस्कृति अपरिहार्य अंग रहे हैं । ऋग्वेद में जो स्तुतियां मिलती हैं उनके गेय रूप की परम्परा के अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए ही सामवेद का ग्रन्थन हुआ । वेदों की यह परंपरा आगे चलकर ज्ञान, कर्म और भक्ति की धारा में प्रवाहित हुई और धीरे धीरे परिवर्तित होते हुए हिन्दी काव्य में रूपान्तरित हुई । उसी प्रकार भारतीय संगीत भी परिवर्तित होकर वर्तमान संगीत कहलाया ।

काव्य को समाज का प्रतिबिम्ब कहा गया है और यही बात संगीत पर भी लागू होती है । यदि वास्तविक धरातल पर काव्य और संगीत को देखा जाये तो वे एक साथ ही समाज से प्रभावित होते हैं तथा समाज को प्रभावित करते हैं । हिन्दी काव्य में जब भक्ति अपने यौवनकाल में थी तो उधर भक्ति संगीत भी उत्कर्ष काल पर था । रीतिकाल में जब समाज में विलासिता छा गई थी तो उस समय काव्य में श्रृंगारिकता की भावना अधिक दिखाई देती थी । उधर भक्ति संगीत का भी पतन

हो रहा था। इस प्रकार काव्य और संगीत अपने सामाजिक धरातल पर एक साथ आगे बढ़ते हैं।

धर्म और भक्ति :- काव्य और संगीत दोनों का प्रारम्भिक आधार धर्म है। दोनों पर आध्यात्मिकता की छाप दिखाई देती है। जीवन के आनन्द को अनुभव करने के लिये मन, वचन और कर्म से भगवान की भक्ति अति आवश्यक है। भक्ति में तन्मयता तथा गम्भीरता का होना आवश्यक है अतः भक्ति में तन्मयता बनाए रखने के लिये एक मात्र साधन संगीत ही है। "संगीत में एक सुनियोजित श्रृंखलाबद्ध लय होती है, स्वरों में एक गति होती है जिससे अबाधित रस-प्रवाह सम्भव हो पाता है। इससे हृदय की तल्लीनता में विशेष सहायता मिलती है। साधना काल में भक्त के हृदय से जो मधुर भावनाएं निकलती हैं वे यदि आस पड़ोस के कोलाहल द्वारा बीच में ही विश्रृंखल हो जायें, तो साधक की एकरसता में बाधा पड़ती है तथा ध्यान के टूट जाने पर पुनः नियोजित करने में समय भी लगता है और इस प्रकार चित्त वृत्ति अस्थिर हो जाने से अत्यन्त कठिनाई होती है, किन्तु संगीत का समाश्रय पाने से ऐसा नहीं होता, क्योंकि हम संगीत की सुनिश्चित, सुसम्बद्ध स्वर लहरियों में हृदय का गान एकीभूत कर देते हैं और इस प्रकार व्यवधानों से बचकर अपने देवाराध्य में एक रस हो जाते हैं अपने आप को भूल बैठते हैं।"[23]

वैदिक काल से ही काव्य और संगीत एक साथ दिखाई देते हैं। हिन्दी काव्य के अनेक महान् कवि उच्च कोटि के भक्त थे। भक्ति काल में हमें काव्य और संगीत का विशेष सम्बन्ध मिलता है। सर्वप्रथम सन्त कवियों ने अपनी वाणी को संगीत साधना से ओत-प्रोत कर जनता के समक्ष प्रदर्शित किया। कबीर, दादू, मलूक, रैदास आदि कवियों ने शास्त्रीय-संगीत का अध्ययन कर राग-रागिनियों को अपने पदों में स्थान दिया। सूफी कवि अपनी रचनाओं को गा-गाकर सुनाते थे। ये कवि प्रेम की साधना संगीत की

सहायता से करते थे । इसके पश्चात् कृष्ण भक्त कवियों ने संगीत और काव्य में परिवर्तन किया । इन्होंने राग और रस का जितना सुन्दर समन्वय किया, उतना हिन्दी साहित्य में किसी ने नहीं किया । राम भक्त कवियों ने भी इस परम्परा को जीवित रखा ।

आनन्द प्राप्ति :- काव्य और संगीत दोनों ही मनुष्य के हृदय में आनन्द की अनुभूति कराते हैं । " जहाँ काव्य हमें प्रकृति तथा कल्पना लोक के सुन्दर सुन्दर अवतरणों का दर्शन कराके एक अलौकिक आनन्द का अनुभव कराता है, वहाँ संगीत के मधुर स्वर हृदय तन्त्री को छेड़कर रसानुभूति द्वारा आनन्द की सृजना करते हैं । यद्यपि साहित्य और संगीत पृथक पृथक भी सच्चे आनन्द को प्रदान करने वाले हैं । बिना संगीत के काव्य तथा बिना काव्य के उत्कृष्ट कोटि के संगीत का सृजन भी हो सकता है । जिस समय हम किसी सुन्दर कविता को पढ़ते हैं तो उस समय हमारा हृदय आनन्द-विभोर हो जाता है । उसी प्रकार श्रवण सुखद संगीत की सुमधुर ध्वनि कान में पड़ने से प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता, तथापि दोनों का संयोग सोने में सुगन्ध उत्पन्न करता है । "[२४]

भारतीय मनीषियों ने काव्य और संगीत दोनों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के सर्वोत्तम साधन माने हैं । यह दोनों आत्मोपलब्धि तथा आत्मानन्द के माध्यम हैं इन दोनों कलाओं से मनुष्य के हृदय में आनन्दानुभूति होती है । " ऐसी परिस्थिति में पाठक को काव्य द्वारा जो आनन्दानुभूति होती है उसमें कविता के साथ साथ संगीत का भी बहुत कुछ हाथ रहता है । कविता जब तक गाई नहीं जाती, तब तक वह अपना पूर्ण प्रभाव नहीं डाल पाती और संगीत भी जब तक गीत से मुक्त नहीं होता, तब तक पूर्णतः प्रभावोत्पादक नहीं बनता । "[२५]

सहृदयता :- संगीत और काव्य दोनों कलाओं में सहृदयता पायी जाती जाती है । सहृदयता के बिना न तो काव्य का आनन्द

उठाया जा सकता है और न ही संगीत का । जब गायक या कवि के समान श्रोता भी सहृदय हो, तभी काव्य और संगीत की रसानुभूति प्राप्त हो सकती है । यदि कोई पाठक या श्रोता ऐसा हो जो सहृदय न हो और यदि उसे काव्य और संगीत सुनने का अवसर मिले, तो वह उसके स्वरूप को भले ही पहचान ले परन्तु उसके आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकता । अतएव सहृदयता, काव्य और संगीत दोनों के लिए आवश्यक है ।

नाद :- ये दोनों कलाएँ ललित कला के अन्तर्गत ही आती हैं जिनमें माधुर्य, सौंदर्य तथा आकर्षण है । दोनों का ग्रहण कर्णों से ही होता है । संगीत का आधार नाद है तथा काव्य का आधार भाषा है जो नाद का ही विकसित रूप है । "काव्य शब्दों का एक विशेष आरोह, अवरोह, संगीत संक्रम या तारतम्य है । शब्द एक ओर जहाँ अर्थ की भाव-भूमि पर पाठक को ले जाते हैं । वहाँ नाद के द्वारा श्रव्य मूर्ति विधान भी करते हैं । काव्य कला का आधार भाषा है, जो नाद का ही विकसित रूप है । अस्तु, दोनों कलाओं का माध्यम एक-सा ही है, केवल अन्तर इतना है कि एक का आधार नाद का स्वरूप व्यंजनात्मक स्वर है, दूसरे का आधार नाद का स्वरात्मक आरोह-अवरोह है ।"[२६]

रसोत्पत्ति :- काव्य और संगीत दोनों के प्राणों में रस है । रस का सम्बन्ध भावों से होता है । यह भाव अनेक प्रकार के होते हैं । इनमें हर्ष, विषाद, प्रेम, घृणा, वात्सल्य, शौर्य, दया आदि प्रमुख हैं यह सब स्थायी भाव हैं और साहित्य के रसों की आधारशिला का निर्माण करते हैं । मनुष्य में नैसर्गिक रूप से रसानुराग होता है यदि उसके शरीर में रक्त संचार है तो रसोद्रेक अनिवार्य चेतना है । राग और रस का अटूट सम्बन्ध है रागों द्वारा रसाभिव्यक्ति होती है । प्रत्येक राग, स्वरों के माध्यम से भावों को व्यक्त करता है । भारतीय संगीत के सातों स्वर रसप्रधान माने गए हैं । नाट्यशास्त्र में भरतमुनि के अनुसार -" हास्य

तथा श्रृंगार में म तथा प, वीर, रौद्र तथा अद्भुत में सा और रे, करुण रस में ग तथा नि और वीभत्स तथा भयानक रस में ध स्वरों का प्रयोग करना चाहिये ।[27] संगीत रत्नाकर में भी प्रत्येक स्वर को विशिष्ट रस से संबंधित माना है - सा और रे वीर, अद्भुत रौद्र रस को, ध ,वीभत्स रस तथा भयानक रस को ग तथा नि करुण रस को, म, प हास्य एवं श्रृंगार रस को उद्दीप्त करते हैं । संगीत मकरन्द के अनुसार - षड्ज में अद्भुत तथा वीर, ऋषभ में रौद्र, गंधार में शान्त, मध्यम में हास्य, पंचम में श्रृंगार, धैवत में वीभत्स तथा निषाद में करुण-रस होता है ।[27]

पं० अहोबल सात स्वरों का नव रसों के अन्तर्गत् वर्गीकरण करते हुए कहते हैं - षड्ज हास्य रस में, मध्यम श्रृंगार में होता है, धैवत वीभत्स रस में, निषाद करुण रस में एवं पंचम भयानक रस में होता है । ऋषभ श्रृंगार में और गंधार हास्य रस में होता है ।[28]

काव्य में शब्दों के माध्यम से रस उत्पन्न किया जाता है । रस विशेष के लिये शब्दों का चयन, काव्य ज्ञान के बिना सम्भव नहीं है । शब्दों तथा स्वरों के माध्यम से ही रस की उत्पत्ति होती है । यदि स्वरों को उचित शब्द तथा शब्दों को उचित स्वर न मिले तो रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती । शब्दों के माध्यम से अन्तर्मन की भावनायें कलात्मक, रसात्मक तथा लयात्मक होकर काव्य का रूप धारण करती है । इसी प्रकार स्वर के माध्यम से वही कलात्मक, रसात्मक तथा लयात्मक अभिव्यक्ति संगीत का रूप धारण कर लेती हैं । अत: यह कहा जा सकता है कि दोनों एक दूसरे के सहयोग से पूर्ण होकर निखर उठते हैं ।

छन्द :- काव्य तथा संगीत दोनों में छन्दों का समान रूप से महत्वपूर्ण स्थान है । हिन्दी-साहित्य के अधिकांश कवियों ने अपने काव्य में विभिन्न छन्दों का प्रयोग कर संगीतात्मक गुणों

को उत्पन्न करने का प्रयास किया है।

कवि- संगीतज्ञ के लिये छन्दशास्त्र तथा लयशास्त्र का पंडित होना आवश्यक नहीं है, किन्तु लयात्मक संस्कारों की आवश्यकता है जो गीत में प्राणों में, कानों में तथा कंठ में सहज रूप से व्याप्त हो। छन्दशास्त्र का ज्ञाता होने से कोई उच्च कोटि का काव्य नहीं लिख सकता और न गीत में अलौकिक लय ला सकता है। इसी प्रकार का बन्धन संगीतज्ञों के लिये भी है। लय का स्वाभाविक ज्ञान संगीत को अधिक कलात्मक बना देता है।

काव्य और संगीत दोनों में छन्दों का समान महत्व है परन्तु फिर भी "संगीत के स्वरों की मात्राओं और छन्दशास्त्र की मात्राओं में अन्तर होता है। छन्दशास्त्र के गुरु और लघु की एक और दो मात्राएं ही होती हैं किन्तु संगीत नाद में एक वर्ण में चार और छ: मात्राएं भी होती हैं। अत: गायक को संगीत के स्वरों की मात्राओं को आलाप द्वारा घटाने - बढ़ाने की पूरी छूट होती है।"[30]

अलंकार :- काव्य और संगीत दोनों में अलंकारों का बहुत महत्व है। "अलंकार काव्य कामिनी के शोभावर्द्धक है, रस के उपकारक हैं। वैसे तो मधुराकृति के लिए मण्डन की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती लेकिन मात्रा, क्रम एवं संगीत को ध्यान में रखकर अगर अलंकार प्रयुक्त हों तो गोरे मुख पर बेंदी की सुन्दरता के समान काव्य - मुख मण्डल सहस्त्र गुणित प्रभासित हो उठता है। शब्दालंकारों से कविता के आन्तरिक संगीत में वृद्धि होती है। वस्तुत: किसी सीमा तक ये ही आन्तरिक संगीत का आधार भी है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हर तरह के अलंकार आन्तरिक संगीत का उद्रेक करने में समर्थ होते हैं। आन्तरिक संगीत की दृष्टि से अनुप्रास और यमक को भी महत्व दिया जा सकता है। संगीत में अलंकार राग की सौन्दर्य वृद्धि में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं साथ ही राग-विस्तार

में सहायता देते हैं।"[31]

काव्य में शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों का महत्व है इससे काव्य की सौन्दर्यात्मकता बढ़ती है। भाषा के नाद-सौन्दर्य की वृद्धि के लिये शब्दालंकार का होना महत्वपूर्ण है उसी प्रकार भाव सौन्दर्य की वृद्धि के लिये अर्थालंकार का होना महत्वपूर्ण है।

लय :- काव्य और संगीत दोनों में लय का प्रयोग महत्वपूर्ण है।

जिन भावनाओं को संगीत, सूक्ष्मरूप से अभिव्यक्त करता है उसी को कविता साकार रूप प्रदान करती है। "कविता में लय का बन्धन संगीत की महत्ता की स्वीकृति का ही लक्षण है। ताल, लय और स्वर द्वारा संगीत में हमारे मनो भावों को तरंगित करने की अद्भुत क्षमता है। अत: कविता लय के माध्यम से संगीत का आश्रय ग्रहण करके हमारे मनोवेगों को तीव्र भाव से जागृत [illegible] और उत्तेजित कर देती है। लय, काव्य को स्वाभाविक रूप से संगीतात्मकता प्रदान करती है और अपनी इस किंचित संगीतमयता के कारण माधुर्य और सरसता तो भावों के साथ लाती ही है साथ ही एक प्रवाह शक्ति और लोच भी उत्पन्न कर देती है।"[32]

काव्य के शब्द तथा भाव जब लय और स्वर में मिलकर राग के माध्यम से व्यक्त होते हैं तब रस की महत्ता बढ़ जाती है और वास्तविक रूप में यही काव्य संगीत कहलाता है। संगीत के विभिन्न प्रकार जैसे गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों को लय निरन्तर गति प्रदान करती है। किसी भी संगीतज्ञ को राग का विस्तार करते समय आलाप, बोल, तान, सरगम आदि का लय के विभिन्न स्वरूपों पर आधारित रहना पड़ता है। वाद्य तथा नृत्य में गत, टुकड़े, तोड़ों आदि में लय के अन्य स्वरूपों का प्रयोग संगीत की सजीवता का प्रमाण है। लय द्वारा गीत, वाद्य तथा

नृत्य में एक ऐसी क्षमता आ जाती है जिससे ईश्वर के साथ हमारा अन्तर्सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि संगीत में लय का प्रयोग हमारे हृदय को एक विचित्र आनन्दानुभूति प्रदान करता है।

भाषा :- इन दोनों में भाषा का भी विशेष महत्व है। संगीत में शब्दों की अपेक्षा स्वर की अधिक प्रधानता है। गायन में शब्दों का महत्व है और रस में भी यह सहायक होते हैं। कवि अपने हृदय की भावनाओं को भाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। कविता में जितना महत्व भाव का है उतना ही अधिक भाषा का। जब तक भाषा में सौन्दर्यात्मकता तथा माधुर्यता नहीं होगी। तब तक वह काव्य का रूप धारण नहीं कर सकती इसलिये भाषा को संगीत का आश्रय लेना पड़ता है। कविता शब्दों के रूप में संगीत है और संगीत स्वर के रूप में कविता है। "काव्य शब्दों का एक विशेष आरोह-अवरोह, संगीत संक्रम या तारतम्य है। शब्द एक ओर जहाँ अर्थ की भाव-भूमि पर पाठक को ले जाते हैं, वहाँ नाद के द्वारा श्रव्य मूर्त विधान भी करते हैं। काव्यकला का आधार भाषा है, जो नाद का ही विकसित रूप है। अस्तु दोनों ही कलाओं का माध्यम एकसा ही है। केवल अन्तर इतना है कि एक आधार नाद का स्वरूप व्यंजनात्मक स्वर है दूसरे का आधार नाद का स्वरात्मक आरोह अवरोह है।"[33]

निष्कर्ष :- काव्य और संगीत दोनों कलाओं में से संगीत कला अधिक प्रभावशाली है। प्राचीन काल से ही मनुष्य पर इसका प्रभाव रहता है। पशु, पक्षी भी इससे प्रभावित होते हैं। संगीत अपनी स्वर-लहरियों से मानव तथा जीवों के अंग-प्रत्यंग में उन्माद की सृष्टि करता है इसके ठीक विपरीत काव्य का प्रभाव होता है। काव्य का प्रभाव उसी व्यक्ति पर पड़ता है जो उस भाषा से परिचित हो।

अतः यह कहा जा सकता है कि काव्य और संगीत का अटूट सम्बन्ध है। काव्य के बिना संगीत और संगीत के बिना काव्य अधूरा है क्योंकि

काव्य की पूर्ति संगीत से और संगीत की पूर्ति काव्य से होती है ये दोनों एक दूसरे के पूरक है। "संगीत साहित्य के लिये उतना ही उपयोगी और आनंददायी है जितनी धरातल के लिये कुसुमावली और गगनतल के लिये आलोक-माला। संगीत के अनुशासन एवं संगीत की श्रृंखलाओं को तोड़कर चलने वाले कवि बहुत कम हैं और उनसे भी न्यून उन गायकों की संख्या है जो शब्द-विहीन तथा साहित्य रहित संगीत की रचना करते हैं। यों तो संगीत से हीन साहित्य भी दृष्टिगोचर होता है और साहित्य से हीन संगीत भी किन्तु ऐसी अवस्था में एक के बिना दूसरा अपूर्ण ज्ञात होता है। अनुमान है कि इसी संयोग के लिए देवी सरस्वती काव्य और संगीत दोनों की अधिष्ठात्री होकर पुण्डरीक के सिंहासन पर एक हाथ में पुस्तक और दूसरे में वीणा के साथ सुशोभित की गई है।"[३४]

काव्य और संगीत दोनों का पारस्परिक आदान-प्रदान अति सुन्दर है। यह दोनों एक ही प्रवाह से बहने वाले दो स्त्रोत हैं जो अलग अलग बहते हैं परन्तु उनका मूल रूप एक ही है। काव्य यदि दीपक है तो संगीत उसकी ज्योति है। काव्य यदि शरीर है तो संगीत उसकी आत्मा है।

--

सन्दर्भ ग्रन्थ

१- Music when combined with a pleasurable idea, is poetry. Music without the idea is simply music, the idea without music is prose, from its very definiteness - Edgar Allen Poe: An Anthology of Critical Statements . page 69.

२- For my own part, I find considerable meaning in the old vulgar distinction of Poetry being metrical, having music in it, being a song ----- A musical thought is one spoken by a mind that has peneterated in to the inmost heart of the thing, detected the inmost mystry of it ,
T. Carlyle: An Anthology of Critical - Statements. Page. 61.

३- प्रयाग संगीत समिति, प्रयाग, वार्षिक संस्करण १९५३ पृ० ११

४- माधुरी सन् १९३३ पृ० ७३८

५- दी न्यू डिक्शनरी ऑफ थॉट्स पृ० ४७०

६- विशाल भारत (नवम्बर १९४९) पृ० ३८७

७- दी न्यू डिक्शनरी आफ थाट्स पृ० ४१४

८- गुलाबराय : सिद्धान्त और अध्ययन पृ० १११

९- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि (प्रथम भाग) पृ० १७९-१८०

१०- आचार्य ललित प्रसाद सुकुल : साहित्य जिज्ञासा: पृ० ५३

११- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य का मर्म : पृ० ११
१२- माधुरी (दिसम्बर १६२७) पृ० ७०२
१३- संगीत (मार्च १६५२) पृ० २४८
१४- डेजी वालिया : निराला की संगीत साधना : पृ० ५६
१५- डा० मदन गोपाल गुप्त: भारत की पांच कलाएं : पृ० ८८
१६- पं० विष्णु नारायण भातखण्डे : संगीत विशारद: पृ० ३
१७- प्रो० विश्वनाथ प्रसाद : कला एवं साहित्य प्रवृत्ति और परंपरा: पृ० १४
१८- वही पृ० १८
१६- प्रो० विश्वनाथ प्रसाद : कला एवं साहित्य: प्रवृत्ति और परंपरा : पृ० १७
२०- श्री देवीलाल सामर : भारतीय ललित कलाएं : पृ० ६२
२१- Music when combined with a pleasurable idea, is poetry, music without the idea, is simply music, the idea without music, is Prose from its very definiteness.
- Edgar Allen Poe : An anthology of Statements. P. 69.

२२- डेजी वालिया: निराला की संगीत साधना : पृ० ६१

२३- लै० भातखण्डे:संगीत : भक्ति संगीत अंक जनवरी १६७० : पृ० ३५

२४- डा० उषा गुप्ता: हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत : पृ० ८३

२५- डा० उमा मिश्रा : काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध :पृ० ४०

२६- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य का मर्म : पृ० ६

२७- बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय (सं०) नाट्यशास्त्र पृ० ३३१

२८- मंगेश रामकृष्ण (सं०) संगीत मकरन्द (नारद) श्लोक सं० ४७-४८

२९- पंडित अहोबल : संगीत परिजात : पृ० २६

३०- डा० आशा प्रसाद : सूर काव्य और संगीत तत्व : पृ० ३८

३१- डेजी वालिया : निराला की संगीत साधना : पृ० ९८

३२- डा० उषा गुप्ता : हिन्दी के कृष्ण भवित कालीन साहित्य में संगीत: पृ० ९८

३३- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य का मर्म : पृ० ९

३४- डा० उषा गुप्ता : हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत : पृ० ९९ ।

--